Multidisciplinary International Magazine
(Peer-Reviewed)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
Volume 6, Issue 69-70, Jan-Feb 2021

JANKRITI जनकृति

बहु-विषयक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
(विशेषज्ञ समीक्षित)
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankriti.com
वर्ष 6, अंक 69-70, जनवरी-फरवरी 2021

भारत का विश्व-बंधुत्ववादी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद
(रामधारी सिंह दिनकर के गद्य साहित्य के आलोक में)

तरुण पालीवाल, शोधार्थी,
हिंदी विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)
मेल आईडी : paliwaltarun09@gmail.com
संपर्क सूत्र : +91-7014545941

सारांश :

आधुनिक विश्व अनेक प्रकार के विचारात्मक चक्रवातों के मध्य उलझा हुआ है। इसमें से सबसे भयावह और गंभीर चक्रवात राष्ट्रवाद की विचारधारा का प्रतीत होता है। इसका आरंभ औपनिवेशिक विचारों के साथ हुआ। पहले-पहल यह भौगोलिक, राजनैतिक और आर्थिक पक्षों तक सीमित था। जिसके परिणामस्वरूप विश्व के अनेक देशों ने परतंत्रता का विष पिया। दो विश्वयुद्ध भी इसी के दुष्परिणाम है। किंतु, अब यह कुत्सित विचारधारा संस्कृति की ओर पैर पसारने लगी है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी संस्कृति को विश्व संस्कृति बनाने पर आतुर है। इससे राष्ट्रों के मध्य प्रतिद्वंद्विता का भाव उत्पन्न हो गया है। जो द्वंद्व शस्त्रों से आरंभ हुआ, वह विचारधारा की कसौटी पर आ पहुँचा है। दिनकर विश्व की इन स्थितियों से परिचित दिखाई देते हैं। वे भारतीय राष्ट्रवाद के समर्थक इसलिए नहीं हैं, क्योंकि वे भारतीय है, प्रत्युत, इसीलिए हैं क्योंकि भारतीय राष्ट्रवाद का मूलभाव विश्वबंधुत्व है। जिसका जयनाद भारतीय संस्कृति सदियों के स्वरों में सदियों से गूँजता आ रहा है।

बीज शब्द: *संस्कृति, राष्ट्र, राष्ट्रवाद, दिनकर*

भूमिका :

रामधारी सिंह दिनकर का साहित्य विषयों की दृष्टि से जीवन के प्रत्येक भाव-विचार से परिपूर्ण हैं। अर्द्धशतकीय वर्षों से अधिक का रचना-काल तथा गद्य-पद्य में लगभग उतनी ही रचनाएँ। जिनमें जीवनानुभवों के विविध रंग चित्रित हैं। जिसमें से सबसे स्पष्ट, गहरा और प्रबल रंग संस्कृति और राष्ट्रीयता का उभरता है। इन भावों से ओतप्रोत भावधारा 'विजय-संदेश' आरंभ होकर 'हुंकार' भरती हुई 'कुरुक्षेत्र' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' तक जाती है। डॉ. जयसिंह 'नीरद' दिनकर के राष्ट्रीय काव्य के संदर्भ में लिखते हैं कि, "दिनकर का राष्ट्रीय काव्य परिमाण की दृष्टि से उनकी अन्य रचनाओं की तुलना में बहुत अधिक है। अपनी आवेगधर्मिता, प्रासादिकता तथा विस्तार से उसने जन-मन को निरंतर प्रभावित भी किया। यही कारण है कि उनके काव्य का यह पक्ष अनेक विशेषताओं से मंडित है। कवि ने न केवल हिंदी के राष्ट्रीय काव्य की संपूर्ण परंपरा की प्रमुख उपलब्धियों को अपनी रचनाओं में आत्मसात किया है; बल्कि बदलते हुए युग के संदर्भों के अनुरूप उसने राष्ट्रीयता के अनेक नवीन आयाम भी उद्घाटित किए हैं।"[1] दिनकर के राष्ट्रीय भावों का प्रस्फुटन पद्य के साथ गद्य साहित्य की

विविध विधाओं में भी हुआ है। 'संस्कृति के चार अध्याय' राष्ट्रीय सांस्कृतिक भाव-विचारों का गौरवग्रंथ है। इसके इतर 'हमारी सांस्कृतिक एकता', 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता', राष्ट्रभाषा आंदोलन और गाँधीजी', 'भारतीय एकता', 'आधुनिक बोध' आदि चिंतनपरक निबंध संकलनों में दिनकर राष्ट्रीय संस्कृति पर अपने विचार प्रकट करते हैं। किंतु, पहले-पहल राष्ट्र शब्द के अर्थ को समझना आवश्यक हो जाता है। 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे पहले संस्कृत भाषा में किया गया है। इसका पहला प्रयोग ऋग्वेद के दसवें मंडल के एक सौ तिहत्तर सूक्त के पहले, दूसरे और पाँचवें श्लोक में किया गया है-

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत्॥1॥

इहैवैधि माप च्योष्ठा: पर्वत इवाविचाचलिः।

इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय॥2॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पति:।

ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम्॥5॥[2]

व्याकरण की दृष्टि से इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत की 'रासृ' या 'राजृ' धातु में 'ष्ट्रन्' प्रत्यय के योग से हुई है। यूरोप में 'नेशन' शब्द का प्रयोग सोलहवीं सदी में किया गया था। अत: व्युत्पत्ति और ऐतिहासिक प्रयोग की दृष्टि से 'राष्ट्र' शब्द पूर्णत: भारतीय है। इसका सबसे प्राचीन प्रयोग संस्कृत भाषा में किया गया है।

रूपा गुप्ता भारतीय वांग्मय के अनुसार राष्ट्रवाद को परिभाषित करती है- "राष्ट्र का आशय उस विशेष भूखंड से है, जहाँ के निवासी एक संस्कृति के सूत्र से आबद्ध है। जहाँ एक संविधान है और जहाँ के निवासियों में अपने राष्ट्र के प्राचीन पुरुषों, साहित्यों और कलाओं के प्रति श्रद्धा, स्नेह और सहानुभूति के भाव विद्यमान है।"[3] प्राचीन भारत की भौगोलिक सीमाओं के वर्णन वेदों, उपनिषदों, पुराणों और महाकाव्यों में मिलते हैं। उस संपूर्ण भूखंड की भाषा संस्कृत थी। उसका संविधान सनातन धर्म था। यहाँ सनातन संस्कृति प्रचलित थी। इसी संदर्भ में राष्ट्र का अर्थ एक संस्कृति के रूप में लिया गया। जबकि, वर्तमान भारत में पिछले तीन-चार हजार वर्षों में कई जातियों का आगमन हुआ है। वह लगभग डेढ़ सदी की धार्मिक-राजनैतिक दासता भुगत चूका है। अत: उसमें अब राष्ट्र संबंधी अवधारणा ये सूत्र में देखने में नहीं आते हैं।

विश्व में भारतीय राष्ट्रवाद विवधता के साथ एकता का अभूतपूर्व उदाहरण है। इस एकता के लिए जो भाव उत्तरदायी है उसे प्रकट करते हुए डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह कहते हैं कि, "जब हम किसी भू-भाग को राष्ट्र की संज्ञा से अभिहित करते है तो उसके मूल में यह तथ्य विद्यमान होता है कि उस भू-

भाग में जो कुछ भी है वहाँ के निवासी, उनकी संस्कृति-सभ्यता, उनका चिंतन, सब कुछ एक आभ्यंतरिक लय से आबद्ध है। यह आंतरिक एकबद्धता ही किसी भू-भाग को राष्ट्र का दर्जा प्रदान करती है।"[4] संपूर्ण भारतीय जनमानस में एक प्रकार की आभ्यंतरिक लय दिखाई देती है। चूँकि, भारत ने लगभग बारह सौ वर्षों की दीर्घ दासता झेली है। अत: अंग्रेजों ने उनको यह समझाया कि भारत पूर्व में कभी एक राष्ट्र था ही नहीं। वह राष्ट्रवाद का भाव से परिचित नहीं था। कतिपय भारतीय विद्वानों ने भी जनता में इसी असत्य विचार का भ्रम फैलाया। इसलिए, महात्मा गाँधी उस समूचे वर्ग की शंका का निराकरण करते हैं। वे कहते हैं- "यह आपका भ्रम है। यह बात तो हमें अंग्रेजों ने सिखाई है कि हम पहले एक राष्ट्र न थे और हमारे एक राष्ट्र होने में सदियाँ लग जाएगी। यह बात नितांत निराधार है। अंग्रेज जब हिंदुस्तान में नहीं आये थे, तब भी हम एक राष्ट्र थे; हमारे विचार एक थे, हमारी रहन-सहन एक थी, तभी तो वे सारे देश पर अपना एक छत्र राज्य स्थापित कर सके। भेद-बिलगाव तो पीछे उन्होंने पैदा किया।"[5] अत: गाँधीजी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद के जनक न अंग्रेज थे और न उनसे पहले आने वाली जातियाँ थी।

दिनकर भारत में राष्ट्रवाद के भाव का जन्म विचारों की एकता से बताते हैं। जिसका पोषण-पल्लवन यहाँ के दर्शन और साहित्य ने किया है- "विचारों की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है। अतएव भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य है, जो अनेक भाषाओँ में लिखे जाने पर भी अंत में जाकर एक ही साबित होते हैं।"[6] वेदों में भारतवर्ष के लिए आर्यावर्त शब्द का प्रयोग किया गया है। किंतु, दिनकर इसको उपयुक्त नहीं मानते हैं- "आर्यावर्त का भौगोलिक अर्थ सारा भारतवर्ष नहीं था। वह दक्षिण में अधिक से अधिक विंध्य पर्वत तक पहुँचता था। किंतु, भारत विंध्याचल पर समाप्त नहीं होता। वह कन्याकुमारी तक फैला हुआ है। इसीलिए, आर्यस्थान, आर्यावर्त आदि नाम गलत है। इस देश का सही नाम भारतवर्ष, हिंदुस्तान या इंडिया ही हो सकता है।"[7] आर्यावर्त शब्द में संपूर्ण भारत की सीमाओं का परिचय नहीं मिलता है, इस कारण दिनकर इससे अधिक उपयुक्त भारतवर्ष, हिंदुस्तान या इंडिया शब्द को प्रश्रय देते हैं। वे इस भू-भाग के भारतवर्ष नाम के पीछे की एक कथा का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं- "जैन अनुश्रुति के अनुसार मनु चौदह हुए है। अंतिम मनु नाभिराम थे। उन्हीं के पुत्र ऋषभदेव हुए, उन्होंने अहिंसा और अनेकांतवाद आदि का प्रवर्तन किया।.....भरत ऋषभदेव के ही पुत्र थे, जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा।"[8] इसके इतर पुराणों और महाकाव्यों में एक अन्य कथा भी प्रचलित है। जिसके अनुसार पुरु वंश में राजा दुष्यंत और ऋषि विश्वामित्र की पुत्री शकुंतला के पुत्र का नाम भरत था। जिनके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। भारत के नाम की कहानी चाहे जो हो लेकिन किसी प्रतापी राजा भरत के नाम पर इसके नामकरण को सभी स्वीकार करते हैं। दिनकर वायु पुराण में उद्धृत श्लोक के आधार पर उत्तर में हिमालय और दक्षिण में समुद्र के मध्य के भू-भाग को भारत नाम से संबोधित करते हैं-

उत्तर यत्समुद्रस्थ हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम।

वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र संतति:।।[9]

अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम, श्रद्धा, समर्पण और बलिदान के भाव भारतीय साहित्य में वेदों से प्राप्त होते हैं। पुराणों, महाकाव्यों आदि में भी अनेक स्थानों पर मातृभूमि हेतु आत्मोत्सर्ग करने को सबसे बड़ा पुण्य बताया गया है। दिनकर भारतीय राष्ट्रवाद के सबसे बड़े और सबल प्रहरी रामायण और महाभारत महाकाव्यों को मानते हैं- "सारा देश का साहित्य आज भी रामायण और महाभारत का क्षीर-पान कर बलिष्ठ हो रहा है, जिससे आप-से-आप यह सत्य ध्वनित हो उठता है कि भारत की विचारधारा एक है, भारत की मानसिकता एक है एवं भारत की एक ही संस्कृति है, जिसकी सेवा विभिन्न भाषाओँ में की जा रही है।"[10] भारतीय साहित्य ने भारत को सांस्कृतिक एकता प्रदान करने और उसको पुष्ट करने का स्तुत्य कार्य किया है।

भारतीय राष्ट्रवाद का भव्य महल संस्कृति की सशक्त और दृढ़ नींव पर खड़ा हुआ। इस कारण इसमें समन्वय और समानता का भाव मूल रूप से विद्यमान रहा है। इसी के प्रभाव में हजारों वर्षों में जो भी जातियाँ यहाँ आई उनका संस्कृति यही की हो गई। दिनकर लिखते हैं- "ईरानी और यूनानी लोग, पार्थियन और बैक्ट्रियन लोग, सीथियन और हूण लोग, मुसलमानों से पहले आनेवाले तुर्क और ईसा की आरंभिक सदियों में आनेवाले ईसाई, यहूदी और पारसी, ये सब-के-सब, एक के बाद एक, भारत में आए और उनके आने से समाज में एक हलके कंपन का भी अनुभव किया, मगर, अंत में आकर, वे सब-के-सब भारतीय संस्कृति के महासमुद्र में विलीन हो गए। उनका कही कोई अलग अस्तित्व नहीं बचा।"[11] पिछले तीन-चार हजार वर्षों में आने वाली अनेक जातियाँ भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के सम्मुख नतमस्तक हुई। वे इसे आत्मसात करती चली गई। वर्तमान भारत में उनका कोई अलग अस्तित्व बचा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता है। इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के निर्माण और पोषण में यहाँ के भूगोल ने भी योगदान दिया। पश्चिम में रेगिस्तान, पूर्व में हिमालय का निम्न ढाल, दक्षिण में समुद्र और उत्तर में विशाल हिमालय, इससे यहाँ की अलग प्राकृतिक सीमा निर्मित होती है। इस सीमा के मध्य एक प्रकार की एकता का भाव स्थापित है। हजारों वर्षों से यह सीमा अक्षुण्ण बनी हुई है। दिनकर लिखते हैं कि, "पहाड़ों और समुद्रों से घिरे हुए इस विशाल देश में जो मौलिक एकता का भाव है, वह हमारे भूगोल की देन है। भीतर से कुछ-कुछ बँटा हुआ और बाहर से बिलकुल एक। भारत की यह विशेषता बहुत पुरानी है।"[12] दिनकर अपनी धारणा को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि, "मौर्यों ने अफगानिस्तान (कंधार) को भारत में मिलाया था, मगर कंधार भारत में रखा नहीं जा सका। यूनानियों ने पंजाब को काटकर कंधार में मिला लिया था, मगर उनकी भी कोशिश बेकार हुई और पंजाब भारत में वापस आ गया। महमूद गजनी ने काबुल में बैठकर भारत पर राज्य करना चाहा, लेकिन इस अस्वाभाविक कार्य में उसे सफलता नहीं मिली। पठान बादशाहों ने दिल्ली में बैठकर पश्चिमोत्तर सीमा के पार की जमीन पर हुकुमत करनी चाही, मगर, वे भी नाकामयाब रहे। सिंध पर जब पहले-पहल

मुसलमानों ने कब्जा किया तब वे भी चाहते थे कि सिंध ईरान का अंग रहे और वे ईरान से ही उस पर शासन चलाएँ, लेकिन, यह भारत के भूगोल के प्रतिकूल बात थी, इसीलिए उनकी भी कोशिश बेकार हुई।"[13] दिनकर द्वारा वर्णित उदाहरणों और प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण और विकास में यहाँ की भौगोलिक दशाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

भारतीय राष्ट्रवाद की यात्रा स्वयं के सांस्कृतिक और भौगोलिक एकता के सूत्र तक ही विश्राम नहीं करती है। वह इससे कही अधिक कठिन और दूरगामी श्रम के मार्ग पर निकल पड़ती है। जिस मार्ग की वर्तमान विश्व को अत्यंत आवश्कता है। वह दुर्गम मार्ग विश्व-बंधुत्व के भाव का है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, महाकाव्यों आदि में इस भाव का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में समस्त पृथ्वी को माता कहकर संबोधित किया गया है। 'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथ्विया' अर्थात यह भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ। इस प्रकार पृथ्वी पर जन्मा प्रत्येक मनुष्य आपस में बंधू है। महा-उपनिषद के छठे अध्याय के बारहवें श्लोक में भारतीय राष्ट्रवाद का भरतवाक्य उद्धृत है। जिसमें मेरा-पराया, छोटा-बड़ा आदि सभी भावों को भूलकर उदार हृदय से संपूर्ण पृथ्वी को एक परिवार मानने की बात कही गई है-

अयं निज: परोवेत्ति गणना लघु चेतसाम।

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम।।[14]

भारतीय मनीषा में आरंभ से ही विश्व-बंधुत्व के विचार की अनुगूँज सुनाई देती है। दिनकर इसका समर्थन करते हुए कहते हैं- "राष्ट्रीयता भारत के लिए फिर भी, कुछ हाल की चीज है, किंतु, अंतर्राष्ट्रीयता के भाव तो अपने देश में हमेशा से विद्यमान थे। भारत में श्रेष्ठ मनुष्य का लक्षण ही यह माना जाता था कि वह संपूर्ण पृथ्वी को पाना कुटुंब समझे, मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद-भाव नहीं रखें और देशों के भौगोलिक भेदों को भूल जाए।"[15] वर्तमान में विश्व-मानवता का नारा दिया जा रहा है। जिसे सबसे पहले भारतीयों ने दिया और उसपर अमल भी किया। यहाँ तक कि कल्याण की यह भावना केवल मनुष्य-जाति तक ही सीमित नहीं रही है, अपितु भारतीयों ने समस्त जीव-जगत के मंगल की कामना की है। वृहदारण्यक उपनिषद में उल्लिखित श्लोक में ऐसे ही विचार प्रकट होते हैं –

ॐ सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे संतु निरामया:।

सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद् दु:ख भागभवेत।।[16]

दिनकर भारतीय राष्ट्रवाद की आत्मा उसकी संस्कृति और धर्म को मानते हैं। जो विश्व-बंधुत्व और विश्व-कल्याण जैसे महान विचारों की नींव पद खड़ा है। वे लिखते हैं- "भारत का मन हमेशा से राष्ट्रीय कम अंतर्राष्ट्रीय अधिक रहा है। प्राचीनकाल में यहाँ राष्ट्रीयता के जो भाव विकसित हुए, उनका आधार राजनीति और अर्थशास्त्र नहीं, प्रत्युत, संस्कृति और धर्म थे। भारतवासी अपने राष्ट्र पर अभिमान तो करते थे, किंतु, इस कारण नहीं कि वह बली और समृद्ध देश था, प्रत्युत इसलिए कि उसकी संस्कृति महान थी, वह अध्यात्म की कर्मभूमि थी और देवता वहाँ देह धरकर प्रकट होने के

लिए लालायित रहते थे।"[17] इसी के प्रभाव से सनातन संस्कृति और धर्म पर आधारित भारतीय राष्ट्रवाद सदियों से अक्षुण्ण अस्तित्व के साथ विद्यमान है।

इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की दिशा राजनैतिक राष्ट्रवाद की ओर अंग्रेज ईसाई जाति के प्रभाव के कारण हुई। दिनकर लिखते हैं- "भारतीय और यूरोपीय संस्कृतियों के संघर्ष से पिछली शताब्दी में भारत में जो महान सांस्कृतिक जागरण हुआ, उसी के परिणामस्वरूप नवीन भारत का जन्म हुआ। यूरोप के सांस्कृतिक आक्रमणों से भारतीयता की रक्षा करने के क्रम में भारत में पहले सांस्कृतिक राष्ट्रीयता जन्मीं, पीछे वही राष्ट्रीयता राजनीतिक राष्ट्रीयता में परिणत हो गई।"[18] उन्नीसवीं सदी में हुए भारतीय पुनर्जागरण ने भारत की तंद्रा भंग की। उसमें नवीन ऊर्जा का संचार हुआ। इस जाग्रत भारत की पहली वाणी राजा राममोहन राय बने। उनके सुधारवादी आंदोलन में जातीय गर्व का मिश्रण स्वामी दयानंद सरस्वती ने किया। इस चेतना की सबसे प्रबल ज्वाला स्वामी विवेकानंद थे। उन्होंने भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व को भारतीय संस्कृति के प्राचीन, विराट और अद्भुत स्वरूप के दर्शन करवाए। दिनकर उन्हें सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का पिता कहते हैं- "स्वामी जी की वाणी ने हिंदुओं में यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि उन्हें किसी के सामने मस्तक झुकाने या लज्जित होने की आवश्यता नहीं है। भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पहले उत्पन्न हुई, राजनैतिक राष्ट्रीयता बाद को जनमी है, और इस सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के पिता स्वामी विवेकानंद है।"[19] आधुनिक काल में स्वामी विवेकानंद ने जिस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का प्रचार-प्रसार किया, वह यूरोप से नहीं जनमा, बल्कि वह पूर्णत: भारतीय था। उन्होंने जिस भारत का परिचय स्वयं भारत और विश्व को करवाया, वह प्राचीन भारत था। जिसने पहले-पहल विश्व में बंधुत्व और कल्याण की बात कही। किंतु, उस समय भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। इस समय विश्व-बंधुत्व की बात करना उसके लिए बेमानी थी। सांस्कृतिक जागरण के यज्ञ में बाल गंगाधर तिलक ने राजनीति की अग्नि प्रज्जवलित की। दिनकर उनके अवदान को उल्लेखित करते हुए कहते हैं कि, "स्वामीजी, प्रधानत: धर्म के मनुष्य थे एवं उनका उद्देश्य मनुष्य-मनुष्य को समीप लाकर विश्व-मानव के जन्म को संभव बनाना था। अतएव, विश्व-मानवता के जो गुण उन्हें भासित हुए, उन्हें हिंदुत्व में प्रतिष्ठित करने की प्रक्रिया से ही उन्होंने हिंदुत्व का सुधार किया। किंतु, तिलकजी, प्रधानत: समाज और राजनीति के पुरुष थे तथा विश्ववाद से उन्हें अधिक प्रेम नहीं था। वे हिंदुओं की पतनशीलता से दुखी थे। वे पराधीनता से क्षुब्ध थे। वे हिंदू-जाति की निवृत्ति भावना से आकुल और उसकी कर्तव्य विमुखता से अधीर थे।"[20] स्वयं के राष्ट्र में पिछले डेढ़ हजार वर्ष से परतंत्र हिंदू-जाति का मनोबल अत्यंत क्षीण हो गया था। उसकि मनोवृत्ति बलहीन और कर्महीन हो चुकी थी। स्वामी विवेकानंद ने उसकी आध्यात्मिक आत्मा को झकजोर कर जगाया और तिलकजी ने उसकी राजनैतिक चेतना का निर्माण किया। इस राजनैतिक चेतना को बनाने और विकसित करने के लिए तिलक ने 'भागवत गीता' के ज्ञान का उपयोग किया। इस ग्रंथ पर लिखी उनकी टीका 'गीता रहस्य' सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसके माध्यम से उन्होंने भारतीयों में ठीक उसी प्रकार स्वाभिमान और स्वराज्य के लिए युद्ध करने की प्रेरणा जाग्रत की, जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन में की थी। इस कार्य में वे सफल

रहे। उनकी प्रेरणा से ही भारतीयों में जातीय गर्व के साथ स्वराज्य संबंधी उग्र विचारों का प्रचार-प्रसार हुआ था। 'स्वाधीनता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे हम लेकर रहेंगे' इसका उद्घोष करने वाले पहले व्यक्ति तिलक थे। अत: आधुनिक भारत में जन्मा राजनैतिक राष्ट्रवाद भारतीय साहित्य की प्रेरणा से निर्मित हुआ। इन्हीं अर्थों में यह विचारधारा और इससे उत्पन्न परवर्ती आंदोलन पूर्णत: भारतीय है। हालाँकि, पराधीनता की प्रतिक्रिया स्वरूप यह लहर उठी थी, लेकिन, इसका जल भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के समुद्र का ही था।

भारतीय राजनैतिक राष्ट्रवादी विचारधारा का सूत्रपात तिलकजी ने किया। कालांतर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसी राजनैतिक संस्था अस्तित्व में आई। जिसने इसमें विस्तार किया। इसके साथ ही अनेक राजनैतिक संगठन अस्तित्व में आए। मूलत: यह विचारधाराएँ दो अलग मार्गों पर आगे बढ़ने लगी। एक धारा ने उग्र विचारों का आश्रय लिया, दूसरी ने अहिंसक विचारों का। किंतु, दोनों का लक्ष्य एक ही था भारतभूमि को विदेशी शासन से मुक्त करवाकर स्वदेशी शासन स्थापित करना। इसमें दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय, विपिनचंद्र पाल, श्रीमती एनी बेसेंट, विनायक दामोदर सावरकर, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह, महात्मा गाँधी, सुभाषचंद्र बोस आदि सैकड़ों महान विभूतियों ने सहयोग दिया। भारतीय राष्ट्रवाद द्वारा राजनैतिक मार्ग चयन करने पर भी उसका सांस्कृतिक स्वरूप नहीं बदला।

निष्कर्ष :

भारतवर्ष के लिए राष्ट्रवाद कोई नवीन आधुनिक विचार नहीं है। किंतु, इसका उद्भव यहाँ कब हुआ, किसने किया? यह प्रश्न वर्तमान में भी अक्षुण्ण है। इसका पहले-पहल उल्लेख विश्व के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेद में हुआ है। वेदों के रचयिता तथा रचनाकाल को लेकर अनेक मत उपलब्ध है। ऐसे ही भारतीय संस्कृति के निर्माता और निर्माण-काल को लेकर भी कई सिद्धांत प्रचलित है। जब तक इनका कालक्रम तय नहीं होता तब तक भारत में राष्ट्रवाद के विचार आरंभ के पक्ष में कोई ठोस स्थापना नहीं दी जा सकती। लेकिन, दिनकर जी वेदों का संकलन-काल ईसा से पच्चीस सौ वर्ष से चौदह सौ वर्ष पहले मानते हैं। उनके दृष्टिकोण से भारत में राष्ट्रवाद की विचारधारा का प्रचलन इस कालखंड में तो स्वीकार किया जा सकता है। यह कालखंड स्वीकार न करने पर भी यह तो तय है कि भारतीय संस्कृति में यह अवधारणा सदियों पहले से प्रचलित है। जिसका पोषण-पल्लवन परशुराम, राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, चाणक्य, शंकराचार्य, रामानंद, कबीर, तुलसी, विवेकानंद, गाँधी जैसे अनेक मनीषियों ने किया। जिसके मूल में विश्व-कल्याण का भाव निहित है। जिसकी वाणी में समस्त प्राणी-जगत के सुखी, समृद्ध और निरोगी होने के स्वर अक्षुण्ण है। इसका प्रमाण है कि भारतीय इतिहास में अनेक पराक्रमी सम्राट हुए। लेकिन, किसी ने भी अन्य राष्ट्रों को पराधीन कर विश्व-विजय दु:स्वप्न नहीं देखा। इसके पीछे भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ही रहा। जिसमें समस्त पृथ्वी को माता और सभी जन

को बंधू के रूप में देखा जाता रहा है। विश्व-मानवता का जयघोष इसी की देन है।

भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आत्मा सनातन धर्म-संस्कृति से निर्मित है। इसी कारण, आधुनिक भारत का नागरिक आज भी राम-राज्य का स्वप्न देखता है। इसकी पृष्ठभूमि राम और कृष्ण जैसे महान चरित्रों ने तैयार की है। महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य, कबीर, दयानंद सरस्वती, विवेकानंद जैसे संतों ने इसकी आत्मा को विस्तार दिया है। वेदाचार्यों, उपनिषदकारों, महाकवियों आदि ने इसकी भौगोलिक सीमाओं का वर्णन किया। प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की विश्व-कल्याण की भावनात्मक रश्मियों के आलोक में आधुनिक भारतीय मनीषा का पल्लवन हुआ। उसने अपनी पराधीनता से मुक्ति से सभी उपकरण प्राचीन भारत से ही प्राप्त किए। पाश्चात्य जगत ने सुप्त, बलहीन और कर्महीन भारतीयों की पराजित मनोवृत्ति को झकझोरा। इससे अधिक उनका कोई योगदान नहीं माना जा सकता है। इसका प्रमाण यह है कि पराधीनता से मुक्ति के लिए उठा राजनैतिक राष्ट्रवाद सदैव अपने भीतर विश्व-कल्याण की भावना लेकर चलता रहा। भारतीय राष्ट्रवाद ने अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से कभी समझौता नहीं किया। अपनी भूमि की मुक्ति के लिए आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा के साथ विश्व-बंधुत्व का नारा भी आधुनिक काल में सबसे पहले भारतीयों ने ही लगाया।

संदर्भ सूची :

[1] जयसिंह 'नीरद' : *परंपरा, आधुनिकता और दिनकर,* अतुल्य पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2019 हार्डबाउंड, पृ.140-141

[2]http://vedicheritage.gov.in/samhitas/rigveda/shakala-samhita/rigveda-shakala-samhita-mandal-10-sukta-173/ date:12/10/2019 time:6:18pm.

[3] रूपा गुप्ता : *उन्नीसवीं सदी का साहित्य : विचारधारा और राष्ट्रवाद* (अप्रकाशित शोध-प्रबंध), जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, सत्र-2000, पृ.21

[4] अब्दुल बिस्मिल्लाह : राष्ट्रीय एकता का स्वरूप और रचनाधर्मिता, *राष्ट्रीय एकता और रचनाधर्मिता* (सं. प्रकाश आतुर), राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, सं.1989, हार्डबाउंड, पृ.09

[5] मोहनदास करमचंद गाँधी : *हिंद स्वराज्य* (अनुवादक-कालिका प्रसाद), सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2019, पेपरबैक, पृ.38-39

[6] *दिनकर रचनावली* (सं. नंदकिशोर नवल और तरुण कुमार), (खंड-नौ) (कुल खंड-चौदह), लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.2011, पेपरबैक, पृ.277

[7] वही : (खंड-दस) (कुल खंड-चौदह), पृ.82

[8] वही : पृ.110

[9] वही : (खंड-दस) (कुल खंड-चौदह), पृ.67

[10] वही : (खंड-दस) (कुल खंड-चौदह), पृ.151

[11] वही : (खंड-दस) (कुल खंड-चौदह), पृ.85

[12] वही : (खंड-नौ) (कुल खंड-चौदह), पृ.278

[13] वही : (खंड-नौ) (कुल खंड-चौदह), पृ.180-181

[14]http://makingindiaonline.in/online-news-in-hindi/2018/07/28/vasudhaiv-kutumbkam-rss.hindutva/ 15-may-2020

[15] *दिनकर रचनावली* (सं. नंदकिशोर नवल और तरुण कुमार), (खंड-नौ) (कुल खंड-चौदह), पृ.261

[16]https://www.google.com/amp/s/www.bhaktibharat.com/amp/mantra/dm-sarve-bhavantu-sukhinaha 20-april-2019, 6:28pm

[17] *दिनकर रचनावली* (सं. नंदकिशोर नवल और तरुण कुमार), (खंड-दस) (कुल खंड-चौदह), पृ.67

[18] वही : (खंड-नौ) (कुल खंड-चौदह), पृ.220

[19] वही : (खंड-दस) (कुल खंड-चौदह), पृ.427

[20] वही : (खंड-दस) (कुल खंड-चौदह), पृ.438